वेद-पुष्पाञ्जलि

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

वेद-पुष्पाञ्जलि
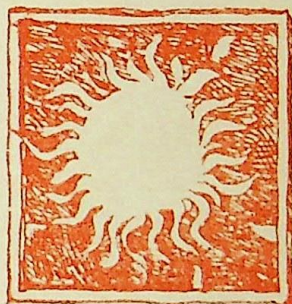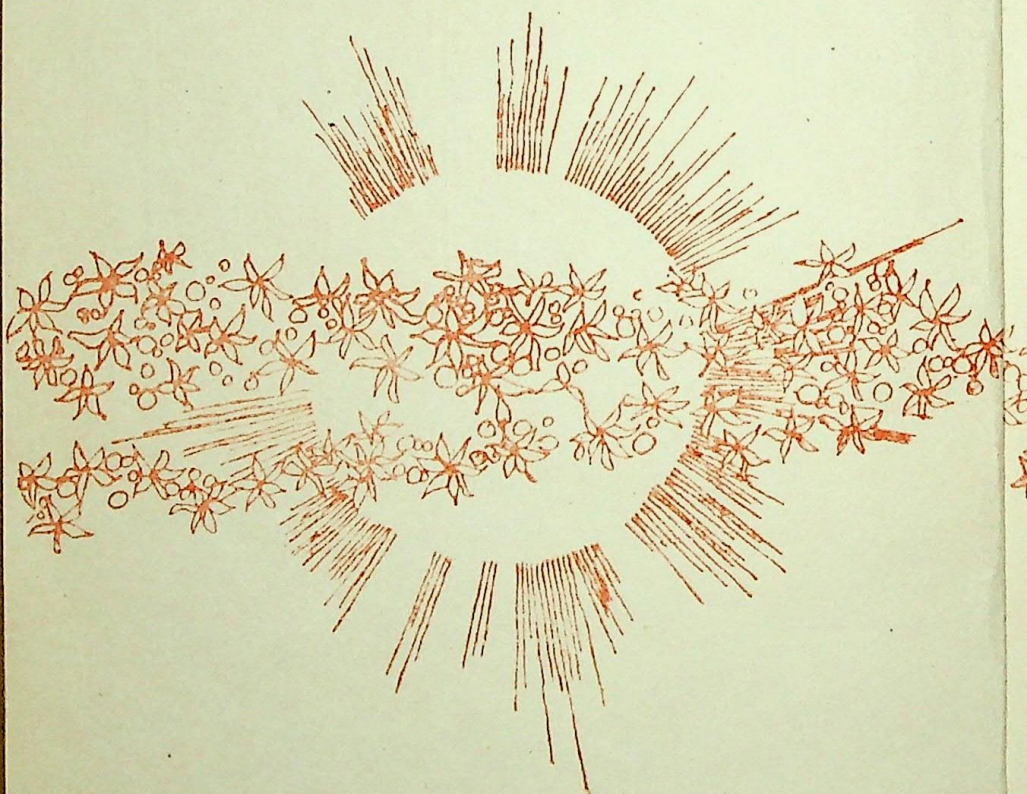
सत्यकाम विद्यालंकार

वेद-पुष्पाञ्जलि
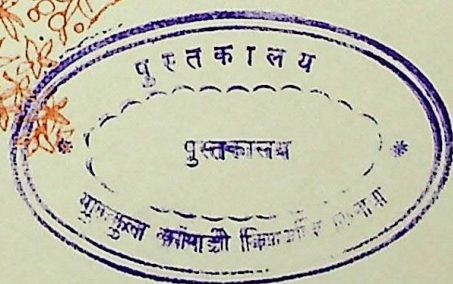
सरस्वती विहार

२१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज

नई दिल्ली-११०००२

लेखक के दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक 'वेद-पुष्पांजलि' वेद-मंत्रों के भावार्थ पर आधारित काव्यमय है। सभी वैदिक ऋचाएं छन्दों में अनुबन्धित हैं। उनकी भाषा-शैली काव्यमय है। विषय कितना ही दुरूह हो, मन्त्रों का शब्दविन्यास काव्य-तत्त्व से रिक्त नहीं होता।

वेदों की काव्यमयता से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने वैदिक मंत्रों का काव्यमय अनुवाद करने का प्रयास किया है। यह प्रयास भी वैसा ही एक प्रयास है; किन्तु इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें कविता के गीतमय होने का भी विशेष ध्यान रखा गया है। प्रायः प्रत्येक कविता संगीत के स्वरों में बड़ी सरलता से बँध सकती है।

इन गीतों में बहुलता ऐसे गीतों की है, जिन्हें विभिन्न रागों के स्वरों में गाया जा चुका है। स्वर एवं लय-ताल का ज्ञान रखने वाले गायक बड़ी आसानी से इन गीतों का गायन कर सकते हैं। इन गीतों में अनेक गीत ऐसे भी हैं, जो लेखक की पूर्व-प्रकाशित पुस्तकों—'वेद-गीतांजलि' एवं 'वैदिक वंदनागीत'—में प्रकाशित हो चुके हैं; किन्तु अब वे पुस्तकें साधारणतया उपलब्ध नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन पूर्व-प्रकाशित गीतों को भी नये सुधार के साथ दिया जा रहा है। इस पुस्तक में मैंने ५२ वेद-मंत्र लिये हैं। यदि प्रति सप्ताह एक मंत्र का मनन किया जाय तो वर्ष-भर की सामग्री हो जाती है।

—सत्यकाम विद्यालंकार

चन्द्रशेखर भवन
२/१७८, सायन रोड (वेस्ट)
बम्बई-२२

प्रस्तावना

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल, प्रथम सूक्त की दो ऋचाएँ हैं—

१. पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीमती, यज्ञं वष्टुधिया वसुः ।।

२. महो अर्णः सरस्वती, प्रचेतयति केतुना, धियो विश्वा विराजति ।।

सरस्वती शब्द वेदवाङ्मय का बहुत सारगर्भित शब्द है। पवित्र ज्ञान, वाणी, साहित्य, संगीत, कला का द्योतक यह शब्द वेद में अनेक स्थलों पर आया है। सरस्वती पवित्र है, प्रेरणास्रोत है, समस्त विश्व इससे आलोकित है—इन शब्दों से वेद ने सरस्वती का अभिवादन किया है।

हमने अपने प्रकाशन-संस्थान का नाम सरस्वती विहार रखा है। दैवी संयोग से हमारे पिता श्री राजपालजी ने ६० वर्ष पूर्व लाहौर में जिस पुस्तक-प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया था, उसका नाम 'सरस्वती पुस्तकालय' था। हमारी पूज्य माताजी का नाम भी सरस्वती है। शायद इसीलिए हमारी सभी प्रकाशन-संस्थाओं को माँ सरस्वती का वरदान प्राप्त है।

बाद में संस्था का नाम बदलकर 'राजपाल एण्ड सन्ज़' हो गया। साहे ही अन्य शाखाएँ—हिन्द पॉकेट बुक्स, शिक्षा भारती, इण्डियन बुक कम्पनी, ओरियण्ट पेपरबैक्स—आदि में भी प्रकाशन-कार्य बँट गया। इन सब प्रकाशन-संस्थाओं ने न केवल अपने देश में, अपितु विदेशों में भी प्रचुर यश अर्जित किया। हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा अभी तक हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू व पंजाबी में १३०० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें देश-विदेश के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों की उत्कृष्ट कृतियों का समावेश हुआ है।

उपर्युक्त प्रकाशन-संस्थानों को हमने अब दो समूहों में विभाजित कर दिया है। एक समूह, जिसमें 'हिन्द पॉकेट बुक्स' तथा 'इण्डियन बुक कम्पनी' हैं, उसमें अब हम 'सरस्वती विहार' नाम से जिस प्रकाशन-संस्थान का प्रारंभ कर रहे

हैं, उसका प्रथम पुष्प 'वेद-पुष्पांजलि' नाम से आपके हाथ में है। वेद सम्पूर्ण भारतीय ही नहीं, विश्व-ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति का बीज-ग्रन्थ है। हिन्दू मात्र का श्रद्धा-केन्द्र है। इसलिए हम भी 'सरस्वती विहार' के प्रथम प्रकाशन को वैदिक वाङ्मय की कुछ ऋचाओं के काव्यमय हिन्दी रूपान्तर के साथ प्रकाशित करते हुए गौरव अनुभव करते हैं।

इस प्रकाशन के साथ हम अपने लाखों पाठकों को यह संकेत भी देना चाहते हैं कि भविष्य में भी हमारे सभी प्रकाशन भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टतम परंपरा के अनुकूल, प्रेरणापरक, स्वस्थ मनोरंजन और ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण होंगे। आशा है कि हमें हिन्दी साहित्य के नवीन प्रामाणिक लेखकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

विनीत

जनवरी, १९७७ —दीनानाथ मल्होत्रा

विषय सूची

●

प्रणाम

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च, सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व० १०. ७. ३१

यस्य भूमिः प्रमा, अन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व० १०. ७. ३२

जो परम ब्रह्म भूत, भविष्य का ही नहीं, त्रिकाल का अधिष्ठाता है और जो अपने कैवल्य रूप में पूर्णतः आनन्दमय है--नत-मस्तक हो हम उस विराट् ब्रह्म की वन्दना करते हैं।

यह विशाल भूमि जिसके चरणतुल्य है, असीम आकाश उदर समान है और ज्योतिर्मय अन्तरिक्ष जिसके मस्तक-तुल्य है—नतमस्तक हो हम उस विराट् ब्रह्म की वन्दना करते हैं ।

उस महान् जगदीश्वर को है, अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ।

भूत भविष्यत् वर्तमान का, जो प्रभु है सब का स्वामी,
निर्विकल्प आनन्द रूप जो, सब का है अन्तर्यामी,

पृथ्वी जिसके चरण तुल्य है, अन्तरिक्ष है उदर समान,
मस्तक पर जिसके तारों का, देवलोक है ज्योतिर्मान,

उस महान जगदीश्वर को है अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ।

वन्दना

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

य आत्मदा बलदा, यस्य विश्व उपासते, प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः, कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

जिसके अन्तर् में साम्यावस्था-रूपिणी प्रकृति के ज्योतिर्मान् तत्त्व निहित थे; जिसकी चैतन्य शक्ति से समस्त ब्रह्माण्ड गतिमान् है। जो प्रभु मन में आत्मशक्ति देता है, देह में बल देता है, जिसकी उपासना सम्पूर्ण विश्व के श्रेष्ठ जन पूर्ण श्रद्धा के साथ करते हैं, जिसकी शरण में मनुष्य अपने जीवन में अमृतत्व प्राप्त कर लेता है और मृत्यु भी अमृतत्व का सोपान बन जाती है, उस परमदेव के चरणों में ही मैं अपना जीवन पूर्णतः अर्पित करता हूँ ।

जिसके अन्तर में थी गर्भित, प्रकृति हिरण्मयि आदिकाल में,
सूर्य चन्द्र नक्षत्र सितारे, जिस प्रभु के थे अन्तराल में ।

आत्मशक्ति देता जो मन में, बल देता है अंग - अंग में,
जिसकी यश गाथा गाते हैं, सभी देवजन दिग्दिगन्त में;

जिसकी छाया में मृत्यू भी, बने अमरता का वरदान ।
जिसकी दया मिले तो जीवन हो जाता है सुख की खान,

उस आनन्द रूप ईश्वर को, अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ।।
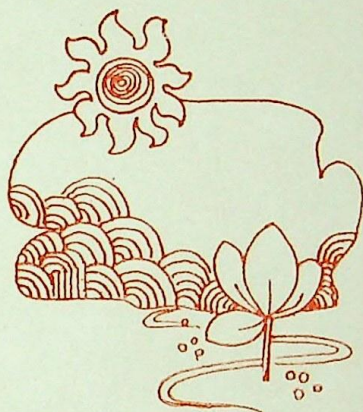
उद्बोधन

उदीर्ध्व जीवो असुर्न आगाद्, अपप्रागात्तम आज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्याय, आगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ।।

ऋक् १. ११३. १६

उठो, हमारे लिए नूतन प्राणशक्ति लेकर सूर्यदेव आ गये हैं। अन्धकार भाग गया है। उषा की आभा चारों ओर फैल रही है, जिसने सूर्य के निर्दिष्ट मार्ग को प्रशस्त कर दिया है। हम उस स्थल पर आ गये हैं जहाँ से जीवन पुनः विकास-पथ पर अग्रसर होता है।

उठो देवगण ! जागो, स्वागत करो, उदय वेला आयी।
निशा - कालिमा दूर हो गई, उषा-अरुणिमा नभ छायी ।।

परम ज्योति के उदय संग फिर, मानव चला नये पथ पर।
जीवन का शृंगार किया नव, मन में नयी उमंगें भर कर ।।

हर दिन सूर्योदय-वेला में, हम सब नयी ज्योति पाते हैं।
जीवन की यात्रा के सब दिन, नया संदेशा लाते हैं ।।

ईशावास्य

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।

यजु:० ४०. १

विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, सबमें ईश्वर का वास है; सब-कुछ उसका है । अतः मनुष्य को चाहिए कि वह ईश्वर द्वारा प्रदत्त सम्पदा का पूर्ण सन्तोष के साथ सेवन करे; पराये धन का लोभ न करे । आखिर यह सब धन किसका है? केवल ईश्वर का ।

ईश्वर का ही है जग सारा, ईश्वर से नहिं कुछ भी न्यारा,
मालिक है वह सारे जग का, एक वही सब का रखवारा ।

अपने संचित कर्म - भोग से, जो जितना सुख पाता है,
उतना उसको सहज भाव से, बिन माँगे मिल जाता है ।

प्रेम मगन मन से जीवन में, अपने धन का भोग करो,
जो पाया संतोष करो तुम, पर धन का मत लोभ करो ।

ईश्वर का ही है जग सारा, ईश्वर से नहिं कुछ भी न्यारा,
मालिक है वह सारे जग का, एक वही सब का रखवारा ।

अन्तःसूर्य

अनुप्रत्नास आयवः, पदं नवीयो अक्रमुः
रुचे जनन्त सूर्यम् ।

ऋग्वेद ६. २३. २

मनुष्य पुरातन परम्परा-प्रिय है, अनुकरणशील है। किन्तु यदि वह नया पग उठाये तो अपने अन्तर् से ही नया सूर्य पैदा कर सकता है। अनुगामी न बनकर अग्रणी बनने की क्षमता रखता है।

अपने सूर्य आप बन जाओ।
तुम हो दिव्य शक्ति के स्वामी,
बनो अग्रणी नहिं अनुगामी ।
अपने ही अनुभव के बल पर,
नए सृजन आधार बनाओ ।।
अपने सूर्य आप बन जाओ।
निर्माता तुम नो निज पथ के,
स्वयं विधाता हो तुम निज के ।
है अनन्त क्षमता मानव की,
अन्तर् में विश्वास जगाओ ।।
अपने सूर्य आप बन जाओ ।
चलो न मिटते पद-चिह्नों पर,
रुको न विघ्नों - बाधाओं पर।
नित्य नयी आलोक - रश्मि से,
अपनी प्रतिभा स्वयं जगाओ।।
अपने सूर्य आप बन जाओ।

अनन्त विस्तार

सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

ऋक् १०. ६०. १

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।

ऋक् १०.६०.३

उस परम पुरुष के शतसहस्र - अनगिन शीर्षस्थान—ज्ञानकेन्द्र—और शतसहस्र नयन हैं। उसके दिव्य चरण पृथिवी की सीमा का अतिक्रमण करके दशों दिशाओं के अनन्त में परिभ्रमण करते हैं।—यह तो उसकी महती लीलामात्र है, वह स्वयं इससे भी महान् है। समस्त दृश्यमान विश्व उसके एक चरण में समा जाता है और तीन चरण सदा अदृश्य लोकों में विचरण करते हैं।

प्रभु का है अनन्त विस्तार, द्यावा - पृथिवी के उस पार।

सर्वव्यापक परम पुरुष के, शत सहस्र हैं शीर्ष नयन ;
दशों दिशाओं के अनन्त में, विचरण करते दिव्य चरण।
प्रभु का है अनन्त विस्तार द्यावा-पृथिवी के उस पार।।

प्रभु का ही विस्तार विश्व है, प्रभु असीम हैं अगम अपार,
एक चरण में यह जग सारा, अमृत तीन चरण उस पार।

प्रभु का है अनन्त विस्तार, द्यावा - पृथिवी के उस पार।।
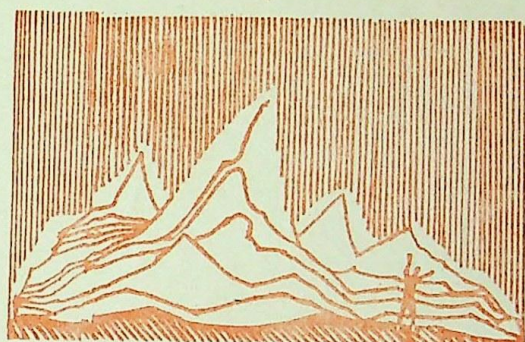
समर्पण

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो
महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋक्० १०. २२१. ४१

ओ३म् यस्येमे हिमवन्तो महित्वा,
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः,
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यजुः० २५. १२

जो इस प्राणिजगत् का, चराचर का महिमामय सम्राट् है, समस्त चौपायों, दोपायों का ईश्वर है ; जिस परम पुरुष की महिमा का संकेत हिमाच्छादित पर्वत कर रहे हैं ; जिसकी गरिमा के गीत सागर की लहरों में घोषित हो रहे हैं ; भुजाओं सदृश फैली ये दिशाएँ जिसकी विशालता की साक्षी हैं, उसी विराट् ब्रह्म के चरणों में हमारा प्रणाम अर्पित है ।

जो इस प्राणि जगत् का स्वामी, महिमामय प्रभु है सम्राट्;
द्विपद-चतुष्पद का जो ईश्वर, विश्व-वंद्य है पुरुष विराट् ।

ध्यान में जिसके मौन-मगन हो, खड़े हुए हैं शैल शिखर,
जिसकी महिमा नदियाँ गातीं, गाते हैं सारे सागर;

जिस विराट् प्रभु की बाँहों में, झूल रहा सारा ब्रह्माण्ड ।
उस महान् जगदीश्वर को है, अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ॥

अखण्ड वन्दना
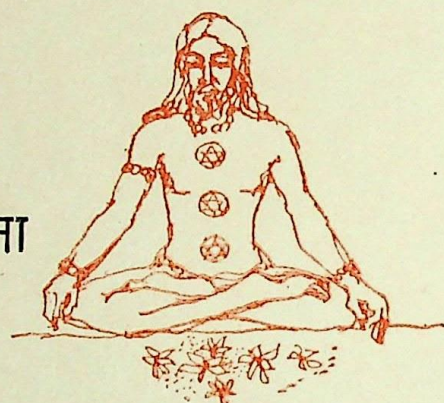
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो ,
भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।

हम उस ज्योतिर्मय प्रभु की आनन्दविभोर हृदय से निशिदिन वन्दना करते हैं जो स्वयं आनन्दमय है, अतिशय प्रेममय है, मधुर है और जिसकी प्रज्वलित ज्योतिशिखा तन-मन को पवित्र करने वाली है।

हम बार बार प्रभु द्वार तुम्हारे आकर तुमसे विनय करें ।

ऐसी निर्मल बुद्धि हमें दो, अविचल श्रद्धा भक्ति हमें दो ।
जिससे इन उलझी राहों में, कभी भटक कर नहिं उलझें ।।

आप हमारे अन्तर्यामी, हो सर्वज्ञ जगत के स्वामी ।
पथ-दर्शक हो, ज्योति आपकी, छल-बल से हम दूर रहें ।।

हमें ज्ञान-धन दो हे स्वामी, रहें आपके प्रभु अनुगामी ।
करें सदा कल्याण जगत का, प्रभु-चरणों में सदा रहें ।।

सोमगान

सोम ! गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः ।
सुमृळीको न आ विश ॥

ऋक्० १. ९१. ११

हे सोम ! असीम सुख-सौन्दर्य के देवता, हे आनन्दस्वरूप; आप हमारे हृदय में आओ । हमारी हृदय-वीणा में अपने स्वर भर दो, जिससे हम वाणी के वरद श्रद्धालु जन अपने स्वरबद्ध काव्यमय गीतों की गूँज से विराट् विश्व के हृदय में आपका प्रेमभरा आनन्द भर सकें ।

साम गान सब जन मिल गायें,
सोम-सुधा बरसायें ।

गायें पावन वेद भारती, जन गण मन हरषायें,
सोम-सुधा बरषायें ।

आओ, आनन्दघन प्रभु, आओ, मन-मन्दिर में आन समाओ।
तेरी वाणी तेरे ही स्वर, तेरी महिमा गायें,
सोम-सुधा बरसायें ।

जीवन की पूजा है अधूरी, आओ हे प्रभु करदो पूरी ।
मेरी स्वर - धाराएँ तेरे, सागर में मिल जाएं,
सोम-सुधा बरसायें ।

गायत्री

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

ऋग्वेद ३. ६२. १०, यजुर्वेद ३. ३५, साम० ३. ६. १०

हे सच्चिदानन्द, हे त्रिलोक और त्रिकाल के स्वामी, आप ही इस जगत् के ज्योतिर्मय प्राण प्रणेता हैं। हम आपकी पावन ज्योति को हृदय में धारण करें; एकाग्र होकर उसका चिन्तन करें। हे प्रभु, वरदान दो कि इस धारणा-ध्यान से प्राप्त आलोक ही हमारी जीवन-यात्रा का पथ-प्रदर्शक रहे।

परम पुरुष हे ज्योतिर्मान,
हम सब को यह दो वरदान।

ज्योति आपकी स्थिर हो मन में,
नित्य निवास करे अन्तर् में।
उसी दिव्यता के प्रकाश में,
मिले सत्य का हमको ज्ञान।
परम पुरुष हे ज्योतिर्मान,
हम सबको यह दो वरदान।

वही ज्योति प्रेरक बन जाये,
मन को वह एकाग्र बनाये।
मानव जीवन की यात्रा में,
हर पल रहे आपका ध्यान।
परम पुरुष हे ज्योतिर्मान,
हम सबको यह दो वरदान।

साक्षात्कार

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्,
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्य,
आत्मनात्मानमभिसंविवेश ।।

यजुः० ३२. ११

अपने कर्मफल भोगता हुआ आत्मा अनेक प्राणियों की योनियों में घूमने और अनेक लोकों में चारों ओर भटकने के वाद वह अपने ही अन्तर् में वसी परम सत्य की अछूती किरण का स्पर्श पाता है। तब वह अपनी अनुभूति के आधार पर अपने सच्चे स्वरूप का दर्शन करता है; स्वरूपावस्थान की स्थिति में पहुँचता है। अपने ही अन्तःकरण में परमात्मा की ज्योति का साक्षात्कार करता है।

बन्दे ! अपने ही अन्तर में,
कर ले प्रभु से साक्षात्कार।

तू योनि योनि हो आया,
तू लोक लोक भरमाया।
पर वियोग रात्रि का अपनी,
अन्त नहीं कुछ तूने पाया।
खुले खजाने दुनिया के सब,
खुला न तेरा ज्योतिर्द्वार।
हुआ न प्रभु से साक्षात्कार।

परम सत्य का कोष निहित है,
तेरे अपने ही अन्तर् में,
परम ज्योति का दर्शन होगा।
अपने ही निर्मल मन में।
जो अदृश्य है हो जायेगा,
जग के घट घट में साकार।

आत्म दीप
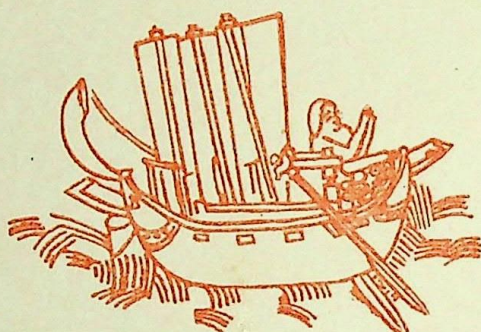
यो अग्निं तन्वो दमे, देवं मर्त्तः सपर्यति ।
तस्मा इद्दीदयत वसुः ।।

ऋग्वेद ५.४४.१५

जो मनुष्य अपनी देह की अन्तर्वासिनी ज्योति को प्रदीप्त करता है—प्राणदाता प्रभु उसका मार्ग अपने प्रकाश से स्वतः प्रशस्त कर देते हैं ।

घर का दीपक बार रे मनुआ,
मन का दीपक बार ।
ज्योति अन्दर की जो जागे,
मिटे जगत अँधियार ।।

ये तन ही तेरा मन्दिर है,
देवता भी तेरे अन्दर है,
अर्पण कर उसके चरणों में,
भक्ति - भाव उपहार ।
घर का दीपक बार रे मनुआ,
मन का दीपक बार ।

निर्मल कर ले मन का आँगन,
अपने में कर प्रभु का दर्शन ।
आएगा खुद आरति करने,
सूरज तेरे द्वार ।
घर का दीपक बार रे मनुआ,
मन का दीपक बार ।
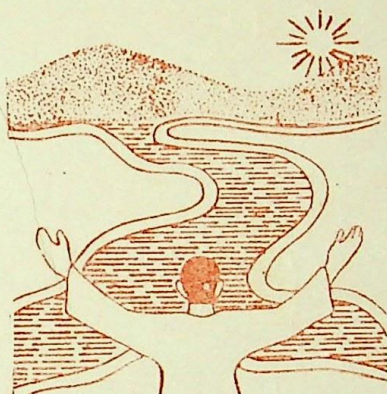
सोमस्रोत

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीमृजन्त्यायवः ।।

सामपूर्वाचिक—६. ३. १०

विश्व में सत्य-शिव-सुन्दर भावना से भरा सोमरस शत-सहस्र धाराओं में प्राणवान अमृतपुत्र मानव के और प्रकृति के रोम-रोम में बह रहा है। उस सतत-प्रवाही सोम का परिमार्जन प्रज्ञामय प्रभु की किरणें सदा करती रहती है।

परम पुरुष का वन्दन करने,
आराधन अभिनन्दन करने।
झरे सोमरस नित्य निरन्तर,
शत सहस्र धाराएँ बनकर ।।

सकल जगत आनन्द - मगन है,
रोम-रोम पुलकित तन - मन है,
सतत - प्रवाही सोम-सरित नित,
झरता दिशा-दिशा निशिदिन है।

वही गगन में, हृदयांगन में,
प्रज्ञा बनता है जन - गण में
होता है जग उससे उज्ज्वल,
करता है वह सबको निर्मल।

झरे सोमरस नित्य निरन्तर,
शत सहस्र धाराएँ बनकर ।

इष्टदेव

न धेमन्यत् आपपन् वज्रिन् अपसौ न विष्टौ ।
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥

ऋक्० ८. २. १७

अपने सब संकल्पों और कामों के प्रारम्भ से पूर्व मैंने प्रभु का ही स्मरण किया। उनका आदेश पालन ही जीवन का ध्येय रहा। सर्व-शक्तिसम्पन्न परम प्रभु के अतिरिक्त मेरा कोई इष्ट देवता नहीं। उसकी स्तुति करने के सिवा किसी और की स्तुति मैं नहीं करता।

और न कोई इष्ट देवता,
केवल प्रभु का है आधार,
प्रभु के हाथों में ही रखना,
जीवन नैया की पतवार।

अपने संकल्पों से पहले,
पाना प्रभु - चरणों की धूल।
ईश - कृपा होगी तो निश्चय,
सारा जग होगा अनुकूल।

जीत-हार की चिन्ता हो नहिं,
केवल प्रभु का ध्यान रहे।
चलन रहे कर्तव्य मार्ग पर,
लक्ष्य विश्व कल्याण रहे।

पूर्णाहुति

तस्य व्रात्यस्य एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ।।

अथर्व० १५. १७. १०

जिस व्यक्ति ने अमृतत्व-प्राप्ति का व्रत लिया है, उस व्रतधारी मानव का एक ही मार्ग है--जीवन की आहुति दे देना ।

व्रात्य, अमर पद के हे साधक,
स्मरण सदा ही यह तुम रखना ।
जीवन एक यज्ञ है उसमें,
समिधा ही बनकर है जलना ।।

विश्वयज्ञ की अग्निशिखा में,
मानव जब आहुत हो जाता ।
तभी प्रभू के वरद हस्त से,
पावन अमृत पद है पाता ।।

यही परम आनन्द - मार्ग है,
यही अमर जीवन - सोपान ।
यही ध्येय है जीवन - पथ का,
इससे ही मानव - कल्याण ।।

अमृत ज्वार

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ।

अथर्व० १९. ५३. ३

मैंने अपनी सुरक्षा के लिए ही बड़े संकोच से डर-डर कर दूर-दूर से ही प्रार्थना की थी ; किन्तु मानो दिशा-दिशान्त ने मेरी कातर पुकार सुन ली और अकस्मात् ही प्रभु-कृपा हुई ; चारों ओर से असीम आनन्द का ज्वार उमड़ पड़ा।

धन्य धन्य मेरे भगवान्,
मैं जितना नादान प्रभू तुम,
उतने कृपा निधान ।
दूर दूर से डरते डरते,
मैंने की थी आर्त पुकार।
पर हे विश्व - विधाता तुमने,
खोल दिये करुणा के द्वार।
दशों दिशाओं से अमृत का,
निर्झर फूट पड़ा अम्लान,
धन्य धन्य मेरे भगवान् ।
एक बूँद माँगी थी अविरल,
अमृत की धारा बरसायी।
पूर्ण तृप्ति हो गई हृदय की,
सूखी खेती सरसायी
टूट गये सारे भव - बन्धन,
मिला अभय वरदान।
धन्य धन्य मेरे भगवान् ।

अमर ऐश्वर्य

उतेदानीं भगवन्तः स्याम,
उत प्रपित्व उत मध्ये अन्हाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य,
वयं देवानां सुमतौ स्याम ।।

यजु:० ३४. ३७

हे परमैश्वर्यवान् परमदानी प्रभु, वर दो कि हम भी सर्वदा ऐश्वर्य-शाली रहें। समय सूर्योदय का हो, सन्ध्या का हो या हो मध्याह्न का—हमारा ऐश्वर्य किसी भी समय क्षीण न हो। आपकी दिव्य शक्तियों का वरदान हमें प्रत्येक क्षण प्राप्त होता रहे।

सब देव दयालु रहें हम पर,
ऐश्वर्य हमारा रहे अमर ।

हो उषाकाल की अरुणाई,
या मध्य दिवस की तरुणाई ।
सूरज की कान्ति ढले चाहे,
सौभाग्य हमारा रहे अचल ।
सब देव दयालु रहें हम पर,
ऐश्वर्य हमारा रहे अमर ।

शशि तारों का वरदान रहे,
जग में सुख शान्ति नितान्त रहे ।
सब भक्तजनों के मस्तक पर,
प्रभु का करुणामय हाथ रहे,

सब देव दयालु रहें हम पर,
ऐश्वर्य हमारा रहे अमर ।
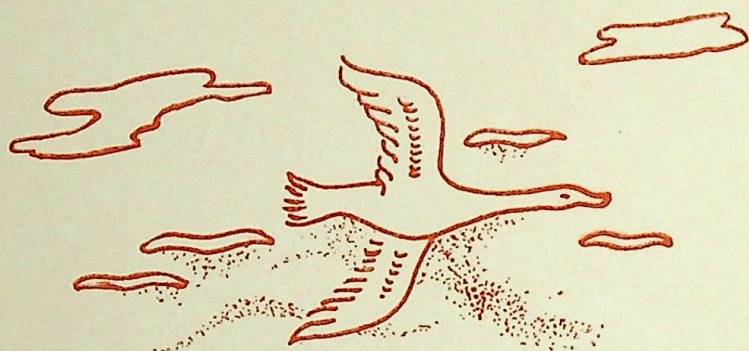
अमृतलोक

यत्र ज्योतिरजस्रम् यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमानः, अमृते लोके अक्षिते,
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

ऋक्० ९. ११३. ७

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामाः तत्र मामसृतं कृधि—
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

ऋक्० ९. ११३. ११

हे सर्वशक्तिसम्पन्न विधाता! मुझे उस अमृतलोक में ले चल और स्थिर कर दे जिसकी अखण्ड ज्योति का प्रकाश कभी मंद नहीं होता। जहाँ आनन्द, मोद और प्रमोद का अनन्त सागर है। जहाँ कामना जागृत होने से पूर्व ही पूर्ण तृप्त हो जाती है। हे मेरे मन, अपनी समस्त प्रवृत्तियों का प्रवाह प्रभु की ओर कर।

अपने मन की गंगा का तुम, प्रभु की ओर बहाव करो।

प्रभु से पाओगे आनन्द, और सभी आमोद-प्रमोद,
जैसे बालक सुख पाता है, पाकर अपनी माँ की गोद।
जीवन में ही अक्षय-अमृत, मिले अनन्त उपाय करो।

ज्योति अखण्ड जगेगी मन में प्रभु-प्रेम विश्वास मिलेगा,
इच्छा होने से पहले ही, पूर्ण तृप्ति का भास मिलेगा।
सच्चे मन से पूर्ण लगन से, तुम ईश्वर से प्यार करो।
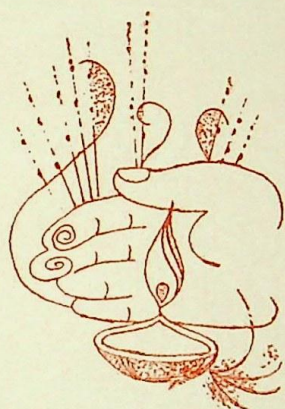
अभयं कुरु

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यः पशुभ्यः ॥

यजुः० ३६. २२

हे प्रभु, आप सर्वत्र व्याप्त हैं। जहाँ भी आप व्याप्त हैं, जहाँ से भी आप सूत्र-संचालन कर रहे हैं वहाँ से हमें अभयदान दो। हमारे साथी सभी प्राणियों के लिए अभय दो और हमारी सन्तान के लिए भयरहित व्यवस्था करो।

भय रहित हमें प्रभु कर दो, श्रद्धा, विश्वास अमर दो।

अगणित इन सब देव-शक्तियों के अधिनायक तुम हो।
अनगिन लोकों और चराचर जग के नियम-नियन्ता तुम हो।
करते तुम्हीं सूत्र-संचालन, चाहे स्वर्ग-नरक हो।
भयरहित हमें प्रभु कर दो……

नहीं माँगते हम प्रभु ! तुमसे, शाश्वत जीवन का वरदान।
निर्भय रहें; मुक्तबन्धन हों, दो क्षण ही चाहे हों प्राण।
भयरहित हमें प्रभु कर दो……

मंगल हो सब जीव-जगत् का, सबको प्रभु निर्भय कर दो।
सभी तरह के उपद्रवों से, मुक्ति मिले, यह वर दो।
भयरहित हमें प्रभु कर दो……

अखण्ड आनन्द

विशं विशं मघवा पर्यशायत,
जनानां धेना अवचाकषद् वृषा ।
यस्या ह शक्रः सवनेषु रण्यति,
स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ।।

ऋक्० १०. ४३. ६

परमदानी परमेश्वर जन-जन के अन्तर् में प्रसुप्त भाव से विद्यमान है। वह अपनी शक्ति से प्रत्येक जन की ज्ञान-क्रिया-संपादिनी इन्द्रियों की शक्ति को प्रदीप्त करता है। किन्तु वह ज्योतिर्मय जिसके श्रेष्ठ कार्यों में, रोम-रोम में रहता है, वह अपने आध्यात्मिक आनन्द की तीव्र अनुभूति के बल पर कष्टों के सब प्रहारों को सुख से सह लेता है।

सबके तन-मन में ईश्वर की ज्योति सदा ही रहती है,
अंग-अंग में, नई प्रेरणा, नई चेतना भरती है ।
भाग्यवान हैं वे जन जिनके रोम - रोम रमते भगवान,
प्रभु आशिष से वे सह लेते, कितने भी हों कष्ट महान ।
विधि-विधान को अटल मानकर, चलते हैं वे प्रभु के पथ पर,
उन्हें मृत्यु भी नहीं सताती, हो जाते हैं वही अमर ।
उनकी जीवन - नैया सुख की लहरों पर ही बहती है,
सब के तन-मन में ईश्वर की ज्योति सदा ही रहती है ।
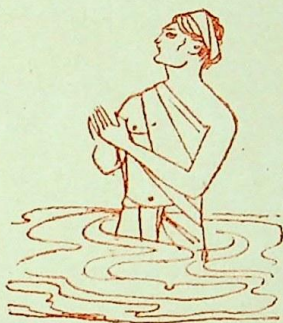
अनन्त तृष्णा

ओ३म् अपां मध्ये तस्थिवांसम्,
तृष्णाऽविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ।।
ऋक्० ७. ८९. ४

सागर की अथाह जलराशि के मध्य खड़े होकर भी संसारी राग-द्वेष में लिप्त मानव-मन की प्यास शान्त नहीं होती। हे रक्षक, हे आनन्द-मय प्रभु! तुम्हीं अपने अमृत जल से मुझे सच्ची सुख-शान्ति दे सकते हो।

मैं अथाह जल बीच खड़ा हूँ,
फिर भी प्यास नहीं बुझ पाये।
राग-द्वेष में डूबा है मन,
घेर रहे हैं कामिनि-कंचन।
यह कैसी तृष्णा है मेरी,
निशिदिन अग्नि अधिक सुलगाये।
मैं अथाह जल बीच……

हे आनन्दरूप परमेश्वर,
जग के ये सब सुख हैं नश्वर।
जितनी आग बुझाऊँ उतनी,
और तीव्र होती जाये।
मैं अथाह जल बीच……

अब तो अपने अमृत-जल की,
एक बूँद से ज्वाला मन की—
शान्त करो, फिर हृदय हमारा,
अविकल अक्षय सुख पाये।।
मैं अथाह जल बीच……

मृत्युञ्जयी

मृत्योः पदं योपयन्तोयदैत;
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन,
शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः ॥

ऋक्० १०. ६२

हे यज्ञमय जीवन व्यतीत करने वाले, कर्तव्यनिष्ठ मनुष्यो, तन-मन से पवित्र बनो; तभी तुम जीवन के प्रत्येक क्षण से संपृक्त मृत्यु के पंजे को पीछे ढकेलते हुए जीवन-यात्रा में आगे बढ़ोगे ; तभी महान यशपूर्ण दीर्घायु पाओगे तथा सन्तान-सुख और समृद्धि के सुख का निर्बाध भोग कर सकोगे ।

मृत्यु के पंजे भयंकर, राह रोकें हर कदम पर,
जिन्दगी के इस सफर में, पग उठाना तुम सम्हलकर ।

राह में ही रुक न जाना, मृत्युभय पर विजय पाना,
लक्ष्य से मत चूक जाना, विघ्न-बाधाओं से डरकर ।

दीर्घ आयुष्मान बनना, विपुल यश-धनवान बनना,
शुद्ध - पावन यज्ञमय कर्मण्य रहना उम्र भर ।

अन्तर में ब्रह्माण्ड

अन्तस्ते दधामि द्यावापृथिवी,
दधाम्यन्तरुर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवैरवरैः परैश्च,
अन्तर्यामे मघवन्मादयस्व ।।

हे देव मानव, मैंने तेरे अन्तर् में समस्त ब्रह्माण्ड के तत्त्व स्थापित किये हैं। द्युलोक, पृथिवी-लोक भी तेरे अन्दर हैं और अन्तरिक्ष भी तेरे हृदय में है। तू अपने गौरव को पहचान और दूर-पास की दिव्य शक्तियों से अनुकूलता बनाते हुए परम आनन्द का भोग कर।

अनुपम है सब सृष्टि प्रभू की, अनुपम तेरी काया है।
देव-पुत्र तुझको ईश्वर ने अपना-सा दिव्य बनाया है।।

मानव सब कुछ तूने जाना, अपना रूप न पहचाना,
व्यर्थ हुआ जाता है जग में, तेरा मानुष तन पाना ।।
अनुपम है सब सृष्टि……

यह आश्चर्य भरा जग सारा, जगदीश्वर की माया है,
तेरे भीतर द्यावा-पृथिवी, सारा विश्व समाया है।।
अनुपम है सब सृष्टि……

तेरा ईश्वर अन्तर्यामी, सारे जग का भी है स्वामी,
तू भी तो आनन्दरूप उस परम पुरुष की छाया है।।
अनुपम है सब सृष्टि……

प्रभुलीन
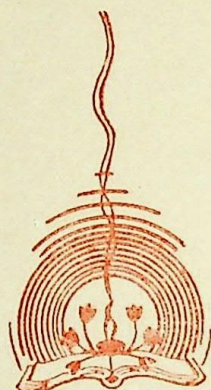
यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ।।

ऋक्० ८. ४४. ३३

हे ज्योतिर्मय ! मैं आपके आशीर्वादों की चरम सार्थकता तभी मानूँगा जब मेरे गुण-कर्म आपके अनुकूल हो जायें ; अपना अहं भूलकर मैं आपके प्रेम में विभोर हो जाऊँ ; मैं आप-सा हो जाऊँ, आप मुझ-से हो जायें, इतनी एकात्मता हो जाये कि मैं-तू के भेद की प्रतीति न रहे ।

प्रभो, जो सत्य हो आशीष तेरा,
सफल हो जाय मानव-जन्म मेरा ।।

सखा हो तुम सदा से ही हमारे,
सनेही हैं हृदय से हम तुम्हारे ।
नहीं फिर भी तुम्हें हम जान पाये,
तुम्हारा रूप नहिं पहचान पाये ।

हटा दो बीच की दीवार अब तो,
बहा दो व्यर्थ के मेरे 'अहम्' को ।
रहे ना रट कि 'मैं हूँ और मेरा,'
यही मानूँ कि 'तू ही और तेरा ।'

प्रभो, जो सत्य हो आशीष तेरा,
सफल हो जाय मानव-जन्म मेरा ।।
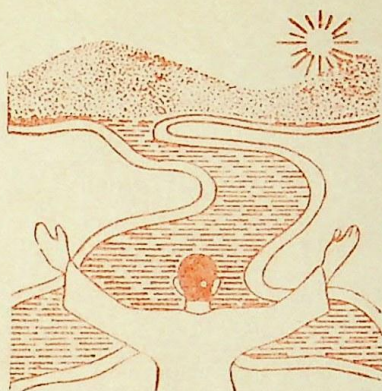
स्वगत-संवाद

उत स्वया तन्वा संवदे,
कदान्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत,
कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम् ।

ऋक्० ६. ४६. २

प्रभु-प्रेम में मगन मानव अपने अन्तःकरण से संवाद करते हुए सोचता है : क्या प्रभु मेरा प्रेम स्वीकार करेंगे ? कब मैं अपने दयालु प्रभु में लीन होऊँगा ? कब मैं पूर्णतः आश्वस्त होकर आनन्दमय प्रभु से साक्षात् भेंट कर सकूँगा ?

सदियाँ बीत गईं बिछुड़ा हूँ, धुँधली - सी उसकी वह याद ।
आ जाती है, जग उठता है मेरा फिर वह प्रेमोन्माद ।।

अपने ही से कर उठता हूँ, उसकी सुधि में वार्तालाप ।
मानो मेरे ही अन्तर् में बैठे हैं प्रियतम चुपचाप ।।

यही पूछता हूँ प्रिय कब तुम, कर लोगे स्वीकार प्रसाद ।
कब होगा प्रिय मिलन हमारा, मिट जायेगा गहन विषाद ।।

देवस्य पश्य काव्यम्
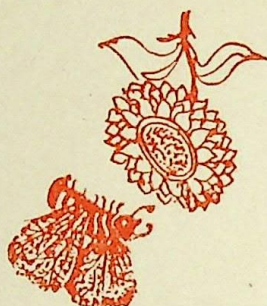
अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति ।
पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।।

परम प्रभु अदृश्य होते हुए भी सदा हमारे साथ है ; कभी वियुक्त नहीं होते। किन्तु निराकार होने से हमारी आँखें उन्हें देख नहीं पातीं। कभी देख पायेंगी भी नहीं। उनके साक्षात्कार का यही उपाय है कि उनकी सुन्दर काव्यकृति—प्रकृति को देखते हुए आनन्द का अनुभव करो। वह भी परमेश्वर के सदृश ही अजर-अमर है।

प्रभु का दर्शन बड़ा सुलभ है,
जो तुम दर्शन की विधि जानो।
निराकार है प्रभु पर उसकी
लीला से जग है साकार।
घट घट वासी है वह फिर भी,
दर्शन हैं उसके दुश्वार।
दूर-पास, अन्दर - बाहर भी,
सब में उसको पहचानो।
प्रभु का दर्शन बड़ा सुलभ है···

सारे जग को रचकर उसके,
अन्दर आप समाया है वह।
यह असीम ब्रह्माण्ड कुछ नहीं,
केवल उसकी माया है यह।
आत्मा के दर्पण में प्रभु के,
दिव्य रूप को तुम पहचानो
प्रभु का दर्शन बड़ा सुलभ है···
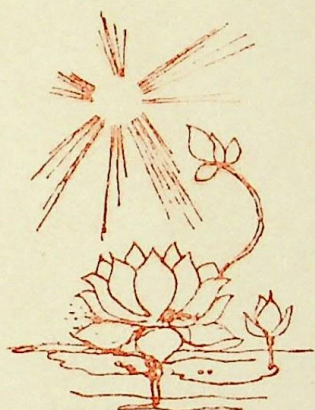
मौन वन्दन

ऐह्यूषु ब्रुवाणि ते अग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्बर्धास इन्दुभिः ।।

ऋक्० ६. १६. ६

हे ज्योतिर्मय, अब मेरी वाणी नहीं—मेरा मौन ही आपकी वन्दना करेगा। मेरी आँखों से छलकते प्रेमाश्रु ही आपका अभिनन्दन करेंगे; आपका यशोगान करेंगे।

ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा ।

आज नैनों के छलकते आँसुओं से ही करूँगा
मौन पद वन्दन तुम्हारा ।
ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा ।

शब्द मेरे खो गये हैं, गीत बेसुध हो गये हैं।
हे गगनवासी निकट अपने बुलाओ,
कर सकूँ जिससे कि आराधन तुम्हारा।
ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा ।

चेतावनी

न देवानामतिव्रतं, शतात्मा च न जीवति ।
तथा युजा विवावृते ।।

ऋक्० १०. ३३. ६

दिव्य महाशक्तियों के निर्धारित कार्य के अनुकूल न चलकर जो उनका अतिक्रमण करेगा वह चाहे कितना ही पराक्रमी हो, कितना ही महात्मा कहलाता हो––उसके सब सांसारिक भोग समाप्त हो जायेंगे। वह एक क्षण भी जीवन धारण न कर सकेगा।

सूर्य चन्द्र, नभ पवन अग्नि जल और गगन के तारे,
एक नियन्ता के नियमों में बँधे चल रहे हैं सारे।

अटल नियम हैं इन देवों के, इन्हें तोड़ सकता नहिं कोई।
स्वयं मिटे जो इन्हें मिटाये, कितना हो बलशाली कोई ।।

नियम और बन्धन में प्रभु के निहित हुआ जग का कल्याण।
इनका करके अतिक्रमण नर, पा सकता नहिं सुख कोई ।।
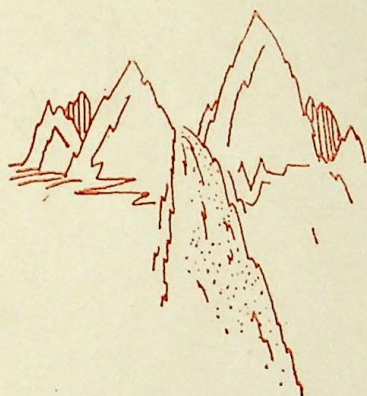
स्वरधारा

उच्चा ते जातमंधसो, दिविसद् भूम्या ददे ।
उग्रं शर्म महिश्रवः ।।
सामः ५. ६. १, ऋक्० ४. ६१. १०

हे स्वर-स्वामी प्रभु ! असीम आलोकमय अन्तरिक्ष में व्याप्त आपकी प्राण-प्रसविनी स्वरधारा ही पृथ्वी पर उतरती है और अनन्त नादमय तथा आनन्द-वर्षिणी पृथ्वी के कण-कण में चेतना का ज्वार भर देती है।

तेरे ही स्वर भरे हुए हैं, ऊँचे व्योम विशाल में,
तेरी ही वाणी की प्रतिध्वनि, पृथ्वी, नभ, पाताल में ।।

अन्तरिक्ष से प्राण-प्रसविनी स्वरधारा जो आती है।
पृथ्वी के कण-कण में मादक जो आनन्द जगाती है।
तेरे ही स्वर भरे हुए हैं……

मेरी वीणा की तारों में, बजता है तेरा संगीत,
मेरे श्वासों के स्पन्दन में स्वर तेरे हैं कालातीत।
बँधे हुए हैं शशि तारे भी, तेरे ही स्वरजाल में।
तेरे ही स्वर भरे हुए हैं……

जीवनरथ
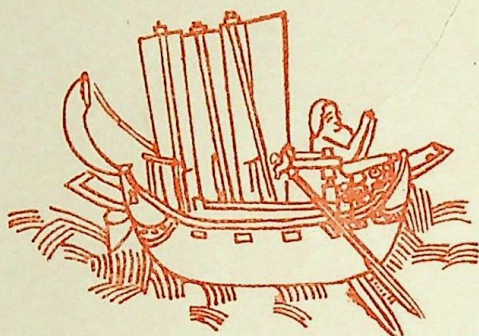
हन्तो नु किमाससे, प्रथमं नो रथं कृधि
उपमं वाजयुः श्रवः ।।

ऋक्० ८. ८०. ५

हे जगन्नियन्ता ! अब विलम्ब क्यों ? हमारे जीवन-रथ के सारथि बनकर उसे सबसे आगे ले चलो, ज्ञान और बल का वरदान दो; यशस्वी बनाओ ।

हे प्रभु, अब तुम बनो सारथी,
मेरे इस जीवन - रथ के ।

मन ने बहुत मुझे भरमाया,
सीधी उल्टी राह चलाया ।
दास बनाया जिन विषयों का—
उनमें ही रह गया उलझ के ।।

हे प्रभु, अब तुम, बनो सारथी,
मेरे इस जीवन - रथ के ।

ले लो, मेरा ज्ञान - ध्यान सब,
संसारी ऐश्वर्य, मान सब ।
तुम्हीं सँभालो इस नैया को,
पार करो भव सागर के ।।

हे प्रभु, अब तुम, बनो सारथी,
मेरे इस जीवन - रथ के ।।

स्वस्ति-मार्ग

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता सं गमेमहि ।।

ऋक्० ५. ५१. १५

हम सब प्राणी सूर्य और चन्द्र की भांति पुनः-पुनः नित्य नवीन दान देते हुए, किसी के विरोध में आये बिना स्वयं अपने मार्ग का ज्ञान पाकर कल्याण-मार्ग पर सबके साथ सहयोग करते हुए, सबकी अनुकूलता प्राप्त करते हुए आगे बढ़ते रहें।

सत्य नित्य शुद्ध बुद्ध, हे अनादि हे, अनन्त,
सर्वशक्तिमान, हे देव, सच्चिदानन्द ।

जैसे सूर्य चन्द्र तारे, चल रहे हैं निर्विरोध,
सृष्टि के विकास में, दे रहे हैं अपना योग ।
हम भी वैसे चलते रहें एक साथ एक संग,
मित्र भाव से रहें बोले मधुर प्रिय वचन ।
सत्य नित्य शुद्ध बुद्ध हे.........

अपनी अपनी राह पर, चलते रहें निर्विकार,
कर्म अपना करते जायें, भूल करके जीत हार ।
एक लक्ष्य मन में हो, एक ही रहे उमंग,
स्वस्ति पन्थ का सदैव करते रहें अनुसरण ।
सत्य नित्य शुद्ध बुद्ध हे.........

महादानी प्रभु
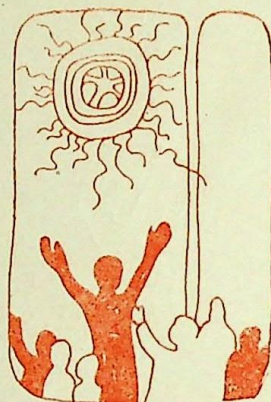
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः,
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ।।

ऋक० १. ७. ७

हम प्रतिक्षण विन माँगे नवीन दान देनेवाले वन्दनीय ईश्वर की वन्दना करके उसके उपकार-भार से मुक्त होना चाहते हैं--किन्तु उसके उपकार की कोई सीमा नहीं। हमारी अल्प रसना का ही दोष है कि वह उसके स्तुति-गीतों की सीमा छूने में असमर्थ हो जाती है।

दाता रे, दाता रे,
पल छिन देता जाता रे।

माँगे बिना तू देता सदा ही,
नव नव अनगिन देता सदा ही।
छिन पल छिन मैं लेता ही।
तेरे द्वार से दान सदा मैं पाता रे,
दाता रे, दाता रे,......

तेरी महिमा गरिमा गाते,
गीतों से हम तुझे रिझाते।
पर हे देवता! तेरा गुण गौरव
कौन कहाँ गा पाता रे।
दाता रे, दाता रे,......

लक्ष्य एक, मार्ग अनेक

त्वं ह्यग्ने अग्निना, विप्रो विप्रेण सन् सता ।
सखा सख्या समिध्यसे ।।

ऋक्० ८. ४३. १४

हे प्रभु, आप तेजोमय हैं। तेजस्वी अपने तेज से आपकी ज्योति प्रदीप्त करते हैं; आप प्रज्ञामय हैं। प्रज्ञावान् प्रज्ञा से, सन्त अपने सहज भाव से, भक्त अपने सखाभाव से अपनेपन में आपकी ज्योति प्रदीप्त करते हैं और आपका साक्षात्कार करते हैं।

जीने की जितनी राहें हैं, सब में ही प्रभु मिल जाते हैं ।

कर्मठ कर्म, ज्ञान से ज्ञानी, भक्त भक्ति से पाते हैं ।
त्यागी तप से, योग से योगी, भोगी भोग लगाते हैं ।।
जीने की जितनी राहें हैं, सब में ही प्रभु मिल जाते हैं।

एक ज्योति से जगत उजागर, एक सत्य में ज्ञान का सागर।
एक प्रेम की डोर में सारे, लोक लोक बँध जाते हैं ।।
जीने की जितनी राहें हैं, सब में ही प्रभु मिल जाते हैं।

सूत्र का सूत्र

यो विद्यात्सूत्रं विततं, यस्मिन्नो ताः प्रजा इमाः ।
सूत्रस्य सूत्रं यो विद्यात्, स विद्यात्परमं महत् ।।

सारे संसार के प्राणी एक सूत्र में ओत-प्रोत हुए हैं; उस सूत्र का ज्ञान प्राप्त करो और फिर उस सूत्र के भी सूत्र को पहचानो। उसे जान-कर ही मनुष्य इस विश्व के परम सत्य को जान सकता है अन्यथा वह अल्पज्ञ रह जाता है।

पंचतत्वमय भौतिक जग यह, एक सूत्र में गुथा हुआ है,
इसके अनगिन सब रूपों में, एक सत्य ही छिपा हुआ है।

पहले उसी सत्य को जानो, भौतिक जग की माया जानो,
फिर उस माया के परदे में निहित प्रभु को तुम पहचानो।

जितनी चेतनता है जग में सबका एक वही है स्रोत,
सब उससे ही पाते जीवन उसमें ही है ओतप्रोत।

पूर्ण समर्पण

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ।।

ऋक्० १. १. ६

हे प्रिय, प्राणवान्, ज्योतिर्मय प्रभु, आपकी यह महिमा पूर्णतः सत्य है कि जो व्यक्ति परमार्थ - साधन में स्वार्थ का त्याग करता है, अहंभाव छोड़कर आपको समर्पित होता है उसका कल्याण आप स्वयं करते हैं।

मन के संशय छोड़ के सारे,
आया तेरे द्वार ईश्वर, आया तेरे द्वार।

ये धन अब तेरा ही धन है, वन्दन ही मेरा जीवन है।
अर्पण है तेरे चरणों में—मेरा सब संसार।
आया तेरे द्वार ईश्वर, आया तेरे द्वार।

कैसी अद्भुत तेरी माया, देने वालों ने ही पाया।
मेरी झोली एक है दाता, तेरे हाथ हजार।
आया तेरे द्वार ईश्वर, आया तेरे द्वार।

और सभी मतलब के पुतले करें अहित, सब हित के बदले,
तू ही केवल सच्चा दानी, दाता विपुल उदार।
आया तेरे द्वार ईश्वर, आया तेरे द्वार।

तन्तुवाय

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं, स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा, अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ।।

ऋक्० ६. ९. ३

वह विधाता विचित्र जुलाहा है। जगत् का ताना-बाना उसकी लीला का विस्तार है। उसके ज्ञान से ही सबको ज्ञान मिलता है, सब चेतनता प्राप्त करते हैं। वह इस समस्त जगत् को देखता हुआ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने दिव्य चरणों से गतिमान् है।

तू अद्भुत है तन्तुवाय प्रभु, जग यह तेरा ही विस्तार।

ताना भी तनता है तू ही, बाना भी बुनता है तू ही,
ताने-बाने दोनों का है केवल तू आधार।

मौन सदा ही तू रहता है, बिन बोले सब कुछ कहता है,
सबके अन्तर में होकर भी, तू अदृश्य ही रहता है।

अपने शत-सहस्र नयनों से, देख रहा तू यह संसार,
एक चरण धरती पर तेरा, एक गगन के है उस पार।

व्रत-धारण

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि,
तत्ते प्रब्रवीमि, तच्छकेयं, तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

हे समस्त संकल्प - विकल्प, विधि - विधान के स्वामी ज्योतिर्मय ईश्वर, मैंने भी व्रत लिया है, संकल्प किया है, तभी आपसे कह रहा हूँ—मुझे वर दें कि मैं व्रत के सफल पालन के लिए शक्तिशाली बनूँ। मैं असत्य का त्याग कर सत्य को अपना रहा हूँ—यही मेरा व्रत है।

मैं असत्य का मार्ग त्यागकर
सत्य - मार्ग का पथिक बना हूँ।

मैंने यह संकल्प किया है,
मन में यह व्रत धार लिया है।
इसे पूर्ण करने की क्षमता
दो प्रभु, तेरे द्वार खड़ा हूँ।
सत्य मार्ग का पथिक बना हूँ।

कठिन नहीं है कोई काज,
तेरा यदि हो आशीर्वाद।
ज्योतिर्मय, मैं इसी आश से
व्रतपति तेरा व्रात्य बना हूँ।
सत्य - मार्ग का पथिक बना हूँ।

अनन्त यात्रा

सहस्राण्यं वियुतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान् सर्वानुरस्युपदद्य, संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ।।

अथर्व० १०. ८. १८

सहस्रों युगों से यह हंस-रूपी जीवात्मा अपने पंख खोलकर सच्चे आनन्द की खोज में उड़ रहा है। सब दिव्य शक्तियों का वरदान हृदय में सँजोकर और ज्ञानचक्षु से सब देखता हुआ अकेला ही अपने प्रिय प्रभु से मिलन - अभिलाषा में उड़ता ही जाता है।

उड़ रहा है हंस मेरा, उड़ रहा ।
युग - युगों से पंख खोले,
खोजता अपना बसेरा,
हंस मेरा उड़ रहा……

देवताओं का हृदय में
धार कर वरदान भी ।
विश्व के सब ज्ञानियों से
सीखकर सब ज्ञान भी ।
उड़ रहा बेचैन होकर
तीन लोकों का चितेरा ।
हंस मेरा उड़ रहा……

उड़ रहा है और उड़ता
जा रहा अविराम है ।
देखता लीला जगत की
भोग से उपराम है ।
जा रहा है प्रिय मिलन को
नील नभ में वह अकेला ।
हंस मेरा उड़ रहा है हंस मेरा ।
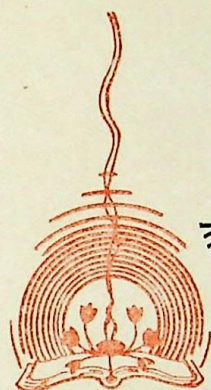
अनन्त ज्योतिर्मान्

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।

ऋक्० ८. ७०. ५

हे जगत् - नियन्ता, असीम ज्योतिर्मय प्रभु, आपके अनुशासन में विश्व के जो शतशः ब्रह्माण्ड हैं और जो शत-शत भूखण्ड हैं—वे सब मिलकर भी आपसे कम हैं, आपकी थाह नहीं पाते। यही नहीं, विशाल विश्व के जो अभी तक अप्रकट ग्रह-उपग्रहमय ब्रह्माण्ड हैं वे भी आपकी थाह नहीं पाते हैं—–वे सब भी आपमें समा जाते हैं।

तुझ - सा तू ही है भगवान,
कोई तेरे नहीं समान ।
कोई नहिं तेरा उपमान,
तुझ-सा तू ही है भगवान।

यह विशालतम भूमि समाये
तेरे एक चरण में ही ।
सौ-सौ सूर्य चन्द्र जाते हैं,
तेरी एक शरण में ही ।
तुझ - सा तू ही है भगवान,
कोई तेरे नहीं समान ।

एक सूर्य ही नहीं सहस्रों
सूर्य चन्द्र तारे गतिमान।
तेरी थाह नहीं पाते हैं,
पा न सके तेरा परिमाण।
तुझ - सा तू ही है भगवान,
कोई तेरे नहीं समान ।

नमो भरन्त एमसि

उपत्वाग्ने दिवे दिवे, दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ।।

सामपूर्वाचिक ६. २. ६, ऋक्० ९. २३. २

हे ज्योतिर्मय, हम प्रतिदिन साँझ-सवेरे ज्ञान और कर्म का दीप जला कर, समस्त ज्ञान-ध्यान को आपके चरणों में अर्पित करके परमार्थ पर चलते हुए आपके समीप आ रहे हैं।

वन्दन को भगवान, पास तेरे निशिदिन आऊँ मैं।

ज्ञान-ध्यान की ज्योति जलाकर, प्रभु-प्रेम के फूल सजाकर,
तेरे चरणों में श्रद्धा का दीप जलाऊँ मैं।

तू ही है प्रभु मेरी मंजिल, तू ही है जीवन का संबल,
मन-मन्दिर के मेरे देवता, तुझे रिझाऊँ मैं।

लोक-लोक के रवि शशि तारे, आरती करते तेरे द्वारे,
उन सँग हे प्रभु, चरण तिहारे शीश नवाऊँ मैं।
वन्दन को भगवान, पास तेरे निशिदिन आऊँ मैं।
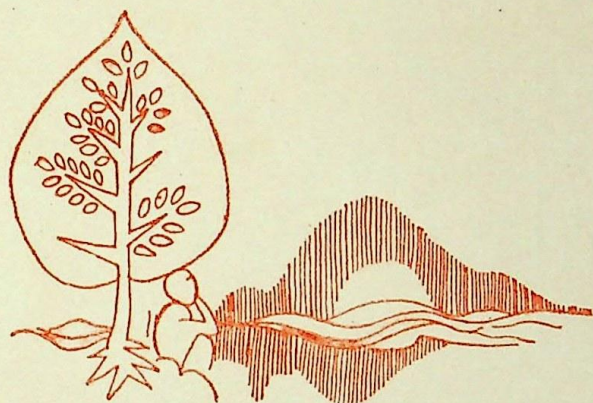
सावधान

ओ३म् मा त्वा मूरा अविष्यवो, मोपहस्वान् आदभन् ।
मा कीं ब्रह्मद्विषो वनः ।।

ऋक्० ८. ४५. २३

प्रभु का मानव मात्र को आदेश है--सावधान रहो कि कभी अन्यायी, निष्करुण व्यक्ति तुम्हें न घेर लें; अथवा ईश्वरद्रोही, नास्तिक तुम्हारी भावनाओं की निन्दा, उपहास न करें; अथवा तुम्हें आक्रान्त न कर लें। उनके कुचक्र में पड़कर अपनी न्यायपूर्ण सच्ची राह न छोड़ देना।

हे मेरे मन, तू एकाकी
बढ़ते जाना देव-पन्थ पर।
रुक मत जाना बीच राह में,
पौरुष खोकर साहस तजकर।

कायर जन का संग न करना,
झूठी निन्दा से मत डरना।
अपने प्रभु से प्रीत लगाकर,
सुख में, दुख में हँसते रहना।
हे मेरे मन, तू एकाकी.........

डरकर पीछे लौट न आना,
अपनी राह पे चलते जाना।
न्याय-मार्ग पर बढ़ते जाना,
विपदाओं से मत घबराना।
हे मेरे मन, तू एकाकी.........

प्रेम-मगन

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं, शीरं पावक-शोचिषम्,
हृद्भिः मन्द्रेभिरीमहे ॥

ऋक्० ५. ४३. ३१

हम विश्व के आनन्दस्वरूप, अत्यन्त प्रिय, अतिशय मधुर, पवित्र करनेवाले और सर्वत्र आलोक के आदिस्रोत प्रभु की प्रेम-मगन मन से स्तुति करते हैं।

निशिदिन प्रेम-मगन मन से हम,
करें वन्दना जगदीश्वर की।

उसका ही आनन्द गगन में,
चमके धरती के कण-कण में।
रखता है नित वह करुणाकर,
सुध-बुध सकल चराचर की।
निशिदिन प्रेम·········

उसकी दीपशिखा पावन है,
उससे निर्मल होता मन है।
हम आनन्द - विभोर हृदय से,
करें अर्चना करुणाकर की।
निशिदिन प्रेम·········

अभिषेक

अर्सर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ, धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये, मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ।।

सामपूर्वार्चिक ६. ५. ११

आज दशों दिशाएँ सखियाँ बनकर परम प्रभु की अर्चना के लिए आकाश से पृथिवी पर उतरी हैं। वे पूरे विवेक और संकल्प के बाद अपने पूज्य देवता का अभिनन्दन करने आई हैं। हमारी वाणी भी आज उसी परमदेव की स्तुति करने को मुखरित हुई है।

आज हमारा है अभिषेक,
रक्तिम आज क्षितिज की रेख।
दशों दिशाएँ सखियाँ बनकर,
महासिन्धु से स्वर्ण कलश भर
रंग-रंग के परिधानों में,
नभ - मंडल से उतरीं भू पर।
आज हमारा है अभिषेक,
रक्तिम आज क्षितिज की रेख।
आज मनीषा मंगलमय हो,
उल्लासों से पूर्ण हृदय हो।
पृथिवी नभ के अन्तराल में,
गूँज रहा स्वर जय जय जय हो।
आज हर्ष का है अतिरेक,
रक्तिम आज क्षितिज की रेख।

लोक - लोक के पुष्प सुगन्धित,
करने को श्रद्धा निज अर्पित,
आज सागरों के अन्तर् में,
भरा भावना का आवेश।
आज हमारा है अभिषेक,
रक्तिम आज क्षितिज की रेख।
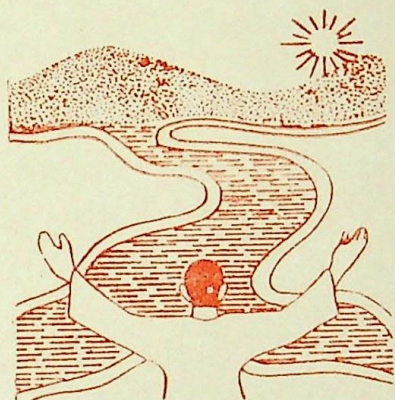
राष्ट्र-भावना

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहुनानेन हविषाऽहम् ।।

अथर्व० १. २. १

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां,
ध्रुवेव धेनुरन पुस्फरन्ति ।।

अथर्व० १२. १. ४५

हमारी राष्ट्रभूमि पर विविध वेष, भाषा, धर्म और विश्वासों के व्यक्ति निवास करते हैं। हमारी पृथिवी माता कामधेनु बनकर सहस्र धाराओं से निरन्तर हमारे वैभव की वृद्धि कर रही है।

हम स्वराष्ट्र गौरव रक्षा करने का प्रण लेंगे।
राष्ट्र शक्ति संरक्षण-वर्धन करने को तन मन देंगे ।।
शत्रु-गर्व खण्डित कर देंगे कोटि-कोटि बाहू बलवान;
राष्ट्र-यज्ञ की अग्निशिखा पर जीवन कर देंगे बलिदान ।।

विविध वेष भाषाओं से है शोभित रहता देश हमारा।
नानाविध धर्मों-विश्वासों की बहती है पावन धारा।
सभी देवता पुण्य भूमि की गोद सम्पदा से भरते हैं।
सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र गगन के माता का अर्चन करते हैं ।।

रात्रि माँ

रात्रिमातरुषसे नः परिदेहि, उषा नो अन्हे परिददातु,
अहस्तुभ्यं विभावरि ।

अथर्व० ११. ४६. २

हे रात्रि माता, हे विभावरी, दिन के परिश्रम से थके-हारे हमें अपनी गोद में सुलाकर प्रभात वेला में माता उषा की गोद में दे देना। उषा माँ पुनः हमें सूर्य के वेगगामी रथ पर बिठा देगी और दिन की थकान के बाद सूर्य हमें पुनः तेरी गोद में विश्राम करने के लिए सुला देगा।

रात्रि माँ ममता - भरी, सुख-शान्ति वरद विभावरी।
दिवस के श्रम से थकूँ जब, तू मुझे गोदी उठाना।
लोरियाँ मुझको सुनाकर गोद में अपनी सुलाना।
रात्रि माँ ममता-भरी.........
उदय-वेला में उषा की गोद में नव प्राण पाऊँ।
सूर्य - रथ पर बैठ फिर से कार्य में मैं जूझ जाऊँ।
रात्रि माँ ममता भरी.........
जिन्दगी के इस सफर में नित्य ही बढ़ता रहूँ मैं।
गोद में ही प्रकृति माँ के, जन्म भर चलता रहूँ मैं।
रात्रि माँ ममता-भरी.........
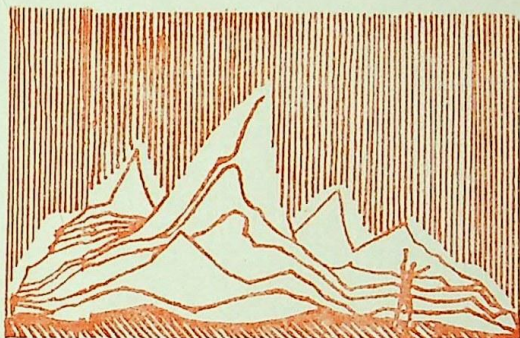
राष्ट्रगीत

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्,
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदये परमे व्योमन्त्सत्येनावृतम् अमृतं पृथिव्यः,
सा नो भूमिस्त्वतिबलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ।।

अथर्व० १२. १. ८

सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षातपो
ब्रह्मचर्यः पृथिवीं धारयन्ति ।।

अथर्व० १२. १

इस सृष्टि के आदिकाल में यह भूमि महासिन्धु में निमग्न थी। बाद में मनीषी और कर्मयोगी व्यक्तियों ने गहन परिश्रम से और तपोमय जीवन से इसका उद्धार किया। इस भूमि और आकाश के हृदय को परम सत्य ने आच्छादित किया हुआ है। परम सत्य राष्ट्र में शक्ति और बल का संचार करे।

जय जय जय हे राष्ट्रभूमि,
जय जय स्वदेश सम्मान ।

अतल नील सागर में डूबा,
पहले था यह देश हमारा,
दिव्य मनीषी तपस्वियों ने,
तप से, श्रम से इसे उबारा।

परम सत्य के आँचल में ही,
रक्षित है सारा ब्रह्माण्ड।
उसके अक्षय प्रखर तेज से,
बने राष्ट्र की शक्ति महान।

शाश्वत सत्य उग्र दीक्षा तप
धरती का नित करें विकास,
कामधेनु बन भूमि सभी को,
देती है निशिदिन आवास।
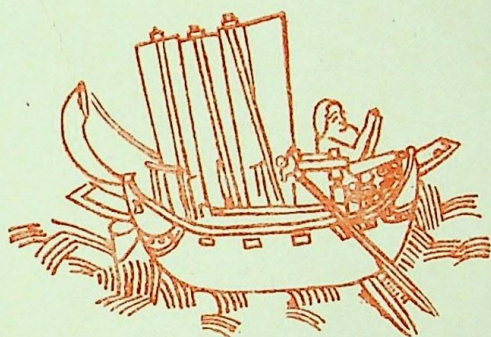
स्वस्ति नावा

स नः प्रप्रिः पारयति, स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अतिद्विषः ॥

ऋक्० ८१. ६. ११

वह सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभु ही स्वयं में पूर्ण है। वही हमारी करुण पुकार सुनकर आता है और इस राग-द्वेष के भँवर में फँसे मानव को अपनी मंगलकारी नौका द्वारा ही भवसागर से पार उतारता है।

कैसे उतरे पार नाव,
यदि प्रभु न तारे ?
भँवरें हैं मझधार,
पार अब कौन उतारे ?

सागर दुर्गम गहरा पानी,
माँझी मूरख नाव पुरानी ।
तू ही तारे तो तारे नाव,
अब राह अजानी ॥
कैसे उतरे पार नाव,
यदि प्रभु न तारे ॥

भक्ति न भावे, ज्ञान न आवे ।
कौन यहाँ जो पथ दरसावे ॥
जीवन मेरा तेरे सहारे,
रोम-रोम प्रभु आज पुकारे ।
कैसे उतरे पार नाव,
यदि प्रभु न तारे ॥

स्वर-जाल
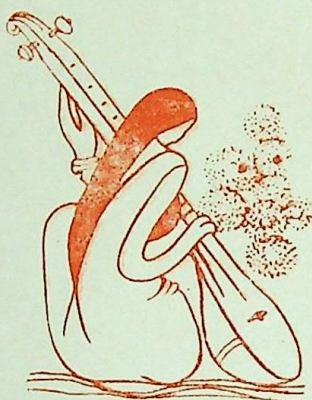
परि प्रासिष्यदत् कविः, सिन्धोरूर्मावधिश्रितः ।
कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥

सामपूर्वार्चिक ५. ५. १०

सागर की अपार जलराशि और उसकी लहरों पर तैरते हुए दिव्य कवि ने प्रेम की वंशी के स्वरों में अनन्त अन्तरिक्ष को आच्छादित कर लिया।

सिन्धु की उठती हुई फेनिल
तरंगों के शिखर पर ।
बैठकर जब दिव्य कवि ने
मधुर वंशी को दिया स्वर ।

व्योम - मंडल के सभी ग्रह
बँध गये स्वर - जाल में ।
विश्व - गायक के अनाहत,
नाद की लय-ताल में ।

इन स्वरों के सूत्र में ही,
सृष्टि का सब ज्ञान है ।
नादमय इस ज्ञान में ही,
मनुज होता है अमर ।

आरोहण

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आहिरोहेममृतं सुखं रथम् अथ जिविर्विदथमावदासि ।।

अथर्व० ८. १. ६

हे पुरुषार्थी मनुष्य, तू स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है, अधोगामी नहीं। अपने जीवन को सफल बनाने के लिए विधाता ने तुझे पूर्णत: समर्थ बनाया है। प्रभु द्वारा प्रदत्त अमृतमय रथ पर आनन्दपूर्वक बैठकर अपनी यात्रा को निर्विघ्न पूरा करो। वृद्धावस्था में शरीर में शिथिलता अनुभव करते हो तो भी अपने वचनों से दूसरों का मार्गदर्शन करते हुए कल्याण-मार्ग पर आगे बढ़ो।

हे पुरुष, तू पुरुषार्थ कर,
यह धर्म है तेरा अमर।
चढ़ना तुझे है शिखर पर,
तू है अजर, अक्षर, अमर।।

राह में रुकना नहीं तू,
पाप से झुकना नहीं तू।
शक्ति दी है दिव्य तुझको,
जय मिलेगी, युद्ध कर।।

भव्य तेरा देव - पथ है,
साथ तेरे दिव्य रथ है।
अमरता के मार्ग पर,
रहना सदा ही तू प्रखर।

हे पुरुष, तू पुरुषार्थ कर……

विश्व यज्ञ

ओ३म् अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।

ऋक्० १. १. ७, सा०पूर्वाचिक० ११. ४

मैं वन्दना करता हूँ उस तेजोमय दिव्य प्रभु की, जो इस सम्पूर्ण विश्व-यज्ञ का प्रणेता है, जिसकी ज्योति से समस्त ब्रह्माण्ड प्रकाशित है ; जो सब देवशक्तियों के कार्य का विभाजन करता है, सब में अपनी दिव्यता भरता है और समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों को यथास्थान प्रतिष्ठित करता है।

विश्व की हे आदि चेतन ज्योति तुझको शत प्रणाम।

सृष्टि में जो यज्ञ विधिवत् चल रहा है,
सूर्य का दीपक सदा से जल रहा है ।
तू पुरोहित है नियन्ता है सभी का,
नियम तेरा अमर है, अविचल रहा है ।
तोड़ सकता है नहीं कोई प्रभू, तेरा विधान।
विश्व की हे आदि चेतन ज्योति तुझको शत प्रणाम,

गगन में अनगिन सितारे जग रहे हैं,
नियम से प्रभु के बताये कार्य अपना कर रहे हैं।
तू बनाता है सभी को तू मिटाता है सभी को,
प्यार से तेरे जगत् के सब चराचर पल रहे हैं।
तू नियोजित कर रहा सब, विश्व है तेरा वितान।
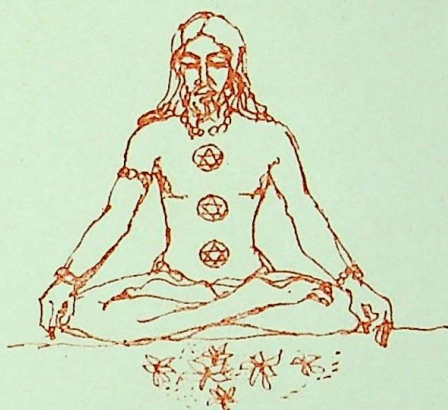
देवपुरी

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।
तस्मिन्हिरण्मये कोशे, त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ।।

अथर्व० १०. २. ३१—३२

मनुष्य का यह देह एक देवपुरी है। इसके नौ द्वार हैं और इसके अन्दर आठ चक्र हैं——ज्ञानकेन्द्र हैं। इस देवनगरी के अन्तरतम स्थान में एक स्वर्ण की कान्ति वाला ज्योतिपूर्ण अधिष्ठान है। वह सत्व, रज, तम के तीन स्तंभों से सुरक्षित है। इस देवपुरी का जो अधिष्ठाता है वही ब्रह्म है। उस स्वरूपावस्थित आत्मा को जानने वाला ही ब्रह्मविद् होता है।

आठ चक्र नौ दरवाज़ों का,
देह बना है आत्मा का ।
इसके अन्तर् में ज्योतिर्मय,
मन्दिर है परमात्मा का ।

अपने अन्तर्वासी प्रभु का,
सदा हृदय में स्मरण करो ।
अपने इस गौरव को जानो,
निज स्वरूप का मनन करो ।

अपने में ही पूर्ण तृप्त हो,
अविरत श्रद्धावान् रहो ।
अपनी दिव्य शक्ति पहचानो,
अमृत और प्रशान्त रहो ।

अवसान

ओ३म् इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां,
शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्न मे प्रदिशो भवन्तु,
न वै त्वा द्विष्मो ऽभयं नो अस्तु ।।

अथर्व० १९. १४. १

अब तो (जीवन के सन्ध्याकाल में) मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं संसारी संघर्षों से अलग हो जाऊँ। पृथ्वी और अन्तरिक्ष की देवशक्तियाँ मेरा कल्याण करें। सब दिशाएँ मेरे लिए द्वेषमुक्त हो जायें और मेरा मन भी द्वेषरहित रहे, भयमुक्त रहे।

जीवन की है ढलती शाम,
हे प्रभु, अब दो यह वरदान।

संसारी संघर्ष न आयें,
राग-द्वेष अब नहीं सतायें ।
धरती के या आसमान के,
सभी देवता दया दिखायें ।
वैर - विरोध मिटे सबके मन,
मिले अभय अक्षय वरदान ।।

सभी स्नेह से भरे हृदय हों,
सभी सुखद हों और सदय हों।
रहे नहीं मन में अभिमान,
केवल भाव रहे कल्याण ।।

जीवन की है ढलती शाम,
हे प्रभु, अब दो यह वरदान।
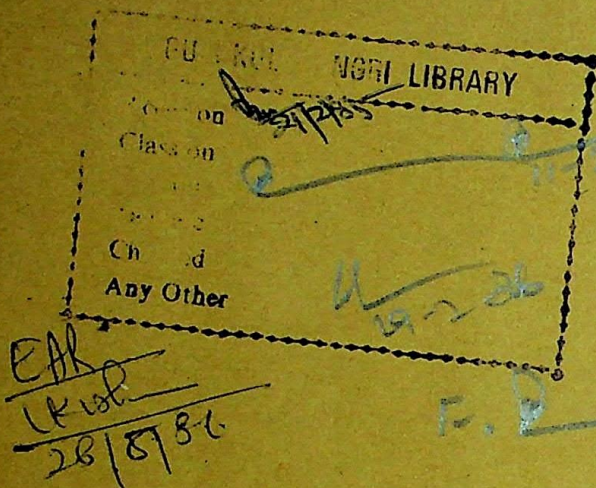
OOO

(94)

Revelation of the Sacred Word

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यद् एषां श्रेष्ठं यद् अरिप्रम् आसीत्
प्रेणा तद् एषां निहितं गुहाविः ।।
सक्तुम् इव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचम् अक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां लक्ष्मीः निहिताधि वाचि ।। ऋ. १०।७१।१-२

(94)

Revelation of the Sacred Word

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यद् एषां श्रेष्ठं यद् अरिप्रम् आसीत्
प्रेणा तद् एषां निहितं गुहाविः ॥
सक्तुम् इव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचम् अक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां लक्ष्मीः निहिताधि वाचि ॥ ऋ. १०।७१।१-२

कुछ सम्मतियां

"जो लोग संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण वैदिक ऋचाओं का अध्ययन नहीं कर पाते, उन तक संगीत की भाषा में वैदिक संदेश पहुंचाकर श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने अपूर्व कार्य किया है।"

—'नवभारत टाइम्स', हिन्दी दैनिक, बम्बई

"प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने वेदों की कुछ मानव-जीवन के लिए प्रेरणादायी ऋचाओं को काव्यमय हिन्दी में रूपांतरित करके अत्यन्त प्रशस्त कार्य किया है। हम इस प्रयत्न का अभिनन्दन करते हैं।"

—'जन्मभूमि', गुजराती दैनिक, बम्बई

"वेद-मंत्रों के अभिप्राय को सरल हिन्दी एवं भावपूर्ण गीतों में प्रस्तुत करके पंडित सत्यकाम विद्यालंकार ने विलक्षण प्रतिभा प्रदर्शित की है। कला की भाषा में वेद के ऊंचे संदेश को सर्वसाधारण तक पहुंचाने के इस प्रयत्न का हम अभिनन्दन करते हैं।"

—'श्रीव्यंकटेश्वर समाचार', हिन्दी साप्ताहिक, बम्बई

"The solemn hymns with their beautiful cadences and syllables were brought home to the layman through eloquent verses in Hindi couched in felicitous language and enlivened by soulful music. Satyakam Vidyalankar deserves our gratitude for the lyrics."

—'Times of India', Bombay

सरस्वती विहार

२१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज

नई दिल्ली-११०००२